International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 24-05-2021, Accepted: 08-06-2021, Published: 23-06-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 116-120

कबीर काव्य में प्रेम और विरह

शतदल मंजरी
शोध छात्रा, तिलकामांझी भागलपुर, विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

सारांश
प्रेम मानव मन और जीवन की कोमलकान्त सूक्ष्म अन्तः भावना का नाम है। प्रेम के अभाव में मानव-जीवन और उसके विकास की कल्पना कर पाना ही संभव नहीं है। "प्रेम को सृष्टि का मूल एवं आदि तत्त्व कहा गया है। उसका क्षेत्र विस्तार सर्वाधिक विस्तृत स्वीकारा गया है। जहाँ तक निर्गुण-सगुण किसी भी प्रकार की भक्ति या आध्यात्मिक साधना का प्रश्न है, वहाँ श्रद्धा-प्रेम के समन्वित रुप को ही 'भक्ति' कहा गया है और श्रद्धा-प्रेम-समन्वित भक्ति भाव को ही अध्यात्म साधना का मुख्य द्वार अभिहित किया गया है।"(१)

प्रेम-तत्त्व जीवन की समस्त साधनाओं की अन्त: धमनियों में अन्त: सलिला के समान आद्यन्त परिव्याप्त रहनेवाला परम पवित्र और परम सूक्ष्म तत्त्व है। कबीर तो क्या, भक्ति काल का निर्गुणवादी या सगुणवादी कोई भी कवि एवं साधक प्रेम-तत्त्व एवं इसकी अन्त: साधना से शून्य अथवा विरहित नहीं है। सभी प्रकार की भक्ति-योग में भी उसका अस्तितत्व असंदिग्ध रुप से स्वीकार किया जाता है।

संत-साधना के मूल में भी नींव के समान प्रेम-तत्त्व का व्यापक अस्तितत्व विद्यमान है, सभी संतों ने इस बात को मुक्त भाव से स्वीकार किया है। सभी संत कवि और साधक अपनी भावगत मूल अवधारणा में भक्ति के मार्ग को प्रेम का मार्ग ही मानते हैं। उनकी मान्यता है कि "इस मार्ग पर चल पाना सहज नहीं, बल्कि तलवार की धार पर चलने के समान ही अत्यंत कठिन है। इसी वस्तु सत्य की ओर स्पष्ट इंगित करते हुए संत प्रवर कबीर ने कहा है-

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुई धरे? तब पैठे घर माहिं।।"(२)

मीरा ने भी प्रेम के मार्ग को 'सूली ऊपर सेज पिया की' कहा है। यहाँ तक पहुँचने क लिए सीस उतारकर भूमि पर रखना पड़ता है अर्थात् सभी प्रकार के स्वार्थों, अहंभावों का त्याग कर आत्म-बलिदान का मार्ग अपनाना पड़ता है। तब कहीं जाकर इस प्रेम के क्षेत्र में प्रवेश संभव हो पाता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि "निर्गुणवादी संतमत एवं कबीर ने प्रेम-तत्त्व सूफी-साधकों-कवियों से अधिगृहित किया है; परंतु साधना की प्रक्रिया भारत में आरंभ होने से पहले भी यहाँ के भक्ति संबंधी सैद्धांतिक ग्रंथों में प्रेम-तत्त्व का व्यापक वर्णन मिलता है। मधुरा भक्ति या प्रेमा भक्ति अथवा कान्ता भाव की भक्ति आदि की समस्त अवधारणाएँ वस्तुतः प्रेम-तत्त्व पर ही आधृत है। श्रीमद्भागवत् तक में प्रेम की अनन्यता का व्यापक वर्णन मिलता है।"(३)

मूल शब्द: कबीर, आध्यात्म, प्रेम, साधक, ब्रहम, आत्मा, विरह

प्रस्तावना

कबीर का आगमन संत नामदेव के बाद हुआ। संत नामदेव ने भी अपनी साधना और भक्ति काव्य में प्रेम का महत्त्व प्रतिपादित किया है। कबीर की प्रेमभावना वस्तुतः संत नामदेव की प्रेमभावना की अनन्यता पर ही आधारित है। अनन्य प्रेम साधना को कबीर आदि संतों ने न केवल भक्ति के लिए आवश्यक बताया है, बल्कि उसे सर्वाधिक महत्त्व भी प्रदान किया है। कबीर ने अपनी वाणी में मधुरा या प्रेमाभक्ति के अनन्य भक्त एवं 'गीत-गोविंद' जैसी सरल काव्य रचना करनेवाले कवि जयदेव का भी अपनी रचनाओं

में कई बार उल्लेख किया है। लगता है कबीर की प्रेमभावना जयदेव की मधुरा भावना से भी प्रभावित हुई है। उनकी वाणी और व्यक्तित्व काफी कुछ अक्खड़ होते हुए भी इसी कारण शुष्क एवं नीरस नहीं हो पाते कि उनके पास भक्ति की माधुर्य भावना और प्रेम-तत्त्व भरपूर मात्रा में विद्यमान है। इस प्रेम के अतिरेक में ही अपने प्रिय के प्रति पूर्ण या सर्वात्मभाव से समर्पित हो वे कह उठते हैं ---

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेबड़ी, जित खैंचे तित जाउं।।"(४)

यह आत्मविश्वास और समर्पित प्रेमभाव ही उन्हें अक्खड़ बना दिया करता है। उनके ह्रदय में ब्रहम एवं सत्य के प्रति प्रेम का अनन्य भाव सदा विद्यमान रहता है। वे सारी दुनियां को अपने समान ही अनन्य प्रेमी देखना चाहते हैं अत: ऐसे व्यक्तियों को खोजते फिरते रहते हैं, जो इस राह पर उनका साथ दे सके। इसी भावावेश में वह कह जाते हैं ---

"प्रेमी ढूण्ढत मैं फिरुँ, प्रेमी मिलै न कोई।
प्रेमी को प्रेमी मिलै तब सब विष अमृत होई।।"(५)

पर प्रेम के कारण यह विष तभी अमृत हो सकता है, जब उसमें अनन्यता हो। दुई या द्‌वैत का भाव कतई न रह जाए। उनके अनुसार प्रेम-पथ में दो का समाव संभव ही नहीं। दुई या द्‌वैत के भाव का अर्थ है अहंभाव का विसर्जन। प्रिय के सान्निध्य के लिए अहम् विसर्जन नितांत आवश्यक है ---

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता मैं दो न समाहिं।"(6)

कबीर ने यह मान्यता व्यक्त की है कि तत्त्व रुप ब्रहम यदि कभी कहीं साकार भी होता है तो महज सूक्ष्म 'प्रेम-रुप' में ही हुआ करता है। अन्यथा वह तो ऐसा है कि ---

"जाकै मुँह माथा नहीं, नाहिं रुप-कुरुप।
पुहुप वास तैं पातरा, ऐसा तत अनूप।।"(७)

आध्यात्म साधना के तत्त्व रुप में तो कबीर ने प्रेम को अपनाया ही है, उनकी सामाजिक-व्यावहारिक धारणाओं एवं भावनाओं को भी मूलत: हम प्रेम-प्रभावित स्वीकार कर सकते हैं।

कबीर सूफियों के समय ही प्रेम का स्वरूप अत्यंत सात्विक स्वीकार करते हैं। वे यह भी मानते हैं कि सत्य स्वरूप प्रेम की प्राप्ति सात्विक ह्रदय को ही संभव हुआ करती है। तभी तो वे 'सीस उतारकर भुई पर धरने' की बात भी कहते हैं। सूफियों के समय ही कबीर प्रेमविहीन जीवन को व्यर्थ बताते हुए कहते हैं ---

"जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस पुनि रखना नहिं नाम।
तै नर इस संसार में उपजि भए बेकाम।।"(८)

एक जगह तो कबीर ने प्रेम-विहीन ह्रदय को मसानवत(श्मशान के समान) भी कहा है। सूफियों की प्रेमानुभूति की चरम परिणति भी एक अन्य रुप में कबीर की वाणी में देखी जा सकती है। सूफी साधना में ब्रहम(प्रिय या आराध्य) को 'माशूक' और 'आत्मा'(प्रेमी या आराधक) को आशिक स्वीकारा गया है, पर कबीर में यह परिणति हमें दाम्पत्य भाव में दीख पड़ती है। अर्थात् कबीर की आत्मा (साधक या प्रेमी) का रुप पति का है। इसी दाम्पत्य भाव से अनुप्राणित होकर ही कबीर ने कहा था -- "मैं राम की बहुरिया।" वे कहते हैं ---

"हरि मेरा पीव भाइ हरि मेरा पीव,
हरि बिनु रहि न सके मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।"
-------- -------- ------- -- इत्यादि।।"(९)

कबीर के रहस्यवाद का मूलाधार यह प्रेम या दाम्पत्य भाव ही है। कबीर से प्रेम की पूर्णता के लिए भगवान् की कृपा , संचित एवं किए जा रहे कर्मों, भाग्य आदि के साथ-साथ प्रिय या साध्य के दिव्य गुणों, अलौकिक सौंदर्य एवं परम सत्ता का ज्ञान भी आवश्यक माना है। क्योंकि प्रिय या साध्य का यह सर्वगुण सम्पन्न या सर्वांगपूर्ण सौंदर्य ही साधक की आत्म-चेतना को तल्लीन कर भावात्मक तादात्म्य के योग्य बनाया करता है। इस स्थिति तक गुरु-कृपा एवं गुरु-प्रदत्त प्रेम अंक के द्‌वारा ही पहुँच पाना संभव हुआ करता है। गुरु-प्रदत्त ज्ञान एवं प्रेम अंक के भाव से भरकर जब साधक की आत्मा आलोकित हो जाती है, तभी उस अलौकिक सौंदर्य की विभोर कर देनेवाली अनुभूति का जन्म हुआ करता है। कबीर ने गुरु से प्रेम का अंक पढ़ ('गुरु ने प्रेम का अंक पढ़ाय दिया') कर

उसे पूर्णतया आत्मसात् कर लिया है। उनकी धारणा है कि प्रेम का गुरु-प्रदत्त यह अंक ही आत्मा को परमात्मा से साक्षात्कार करानेवाला है, तभी जिसके बारे में कबीर कहते हैं ---

"कबीर पेख्या एक एक अंग महिमा कहि न जाए।
तेज पुँज पारसमणी नैना रही समाय।।"(१०)

नैनों में समा रही इस ज्योति का अस्तित्वाभास करने के लिए ही प्रेमी साधक सामान्य मार्ग त्याग कर रहस्य-साधना के मार्ग पर चलने लगता है और तब उसे अनेक कठिन स्थितियों-परिस्थितियों एवं अवस्था में ही गुजरने के लिए बाध्य होना पड़ता है। प्रेम-साधना बाह्य न रहकर एक प्रकार की अंतरंग साधना का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। आत्मा तेज-पुँज की ज्योति का आभास पा उसके प्रेम में दीवानी हो उठती है। पर उस दीवानगी का सीधा संबंध भी प्रिय के साथ रहने के कारण एक प्रकार के अकथनीय आनंद की तरलायित अनुभूति सदा बनी रहती है। उस समय की अवस्था वाले प्रेमी की पहचान बताते हुए कबीर कहते हैं ---

"हरि रस पीया जांणिये, जो कबहूँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नाहिं तन की सार।।"(११)

पर जैसे ही माया के कारण यह खुमारी टूटती है, तो प्रेमी या साधक का मन प्रिय-विरह में तड़प उठती है। पर कबीर प्रेमजन्य विरह को बुरा नहीं मानते। वे तो विरह को 'सुलतान' कहते हैं ----

"विरहा बुरहा मति कहौं, विरहा है सुलतान।
जिहि घट विरह न संचरै, सो घट सदा मसान।।"(१२)

मसान निर्जीवता का प्रतीक है, जबकि प्रेममार्ग में निर्जीवता के लिए कोई स्थान नहीं। 'विरह' 'सुलतान' इसलिए है कि वह आत्मा को परिष्कृत करके हमेशा सजग-सजीव एवं प्रिय के निकट रखता, उसी की ध्यान- धारना में विलीन किए रहता है।

फिर भी विरह की अपनी विशेषता है। वह प्रेमी को प्रिय में ही तल्लीन रखता है। उसका रोम-रोम रवाब-सा तनकर प्रिय की रटन में अनवरत बजता रहता है और उसकी आवाज प्रिय तक अवश्य पहुँचती है, कबीर का यह दृढ़ विश्वास है ---

"सब रग तांति रवाब तन, बिरहा बजावै नित।
और न कोई सुनि सकै, कै सांई कै चित्त।।"(१३)

प्रेम साधक कबीर की विरही आत्मा यथास्थान विरह की चिंता, उद्वेग, जागरण, कृशता आदि सभी अवस्थाओं का वर्णन करती जाती है। इन अवस्थाओं के वर्णन में भी कहीं-कहीं सूफी प्रभाव अवश्य परिलक्षित होने लगता है। सूफी संत मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मामत्' का एक उद्धरण इस प्रकार है --

"या तन जारौं छार कै कहो कि पवन उड़ाव।
मकु तहि मारग उड़ि पड़ों, कन्त धरै जहं पाव।।"(१४)

इसी भाव-भूमि पर अधिष्ठित कबीर का भी एक पद्य प्रस्तुत है ---

"यह तन जालौं मसी करौं ज्यों धुंआ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावै अग्गि।।"(१५)

इस प्रकार, कबीर का प्रेम-भाव विरह की सहज, सरल एवं स्वाभाविक अनुभूतियों से परिचालित होता हुआ साधना के पथ पर अनवरत अग्रसर होता जाता है। प्रेम की चरम परिणति दाम्पत्य भाव में ही समग्रतः दिखाई देती है और कबीर ने इसी भाव को ही अपनी समूची साधना में प्रमुखतः अपनाया है। प्रिय-प्रिया के विरह भाव पर आश्रित होने के कारण ही कबीर की इस प्रकार की उक्तियाँ रहस्यवाद की सीमा का संस्पर्श कर उसका अन्तः अवगाहन भी करने लगती है। तब कबीर कभी तो विरहजन्य परिस्थितियों का और कभी उसके दाहों का वर्णन करने लगते हैं, कभी प्रिय लोक के माधुर्य का उल्लेख करते एवं कभी मिलन की विभोरता का दिग्दर्शन करने लगते हैं। तब कई बार उनकी वाणी इस प्रकार से स्वरित होने लगती है ---

"तूं-तूं करता तूं भया मुझ में रही न हूँ।
बारी फेरी बलि गई जित देखों तित तूं।।"(१६)

इस परिस्थिति तक पहुँचने के लिए साधक की आत्मा को कई बार की विषम परिस्थितियों में से गुजरना पड़ता है। तन के अन्तः बाह्य अंग-प्रत्यंग को प्रेम-विरह की कसौटी पर कसना-कसाना पड़ता है। न जाने प्रिय-मिलन की साध लेकर कहाँ-कहाँ की खाक छानने की बाध्यता ढोनी पड़ती है। तब नयन जीभ और जीभ नयन बनकर प्रिय-मिलन के लिए

व्याकुल हो एक मुखर गुहार बन जाती है ---

"नैना नीझर लाइया, रहट बहै मिस याम।
पपिहा ज्यौं पिउ-पिउ करौं कब रे मिलहुगे राम।।"(१७)

किंतु, धीरे-धीरे प्रेम-साधना रंग लाने लगती है। विरह का ताप प्रिय तक पहुँच उसकी प्रस्तरता को भी पिघलाने लगता है। विरहिणी आत्मा को प्रिय मिलन का पूर्वाभास-सा होने लगता है। भावनात्मक मिलन की सी स्थिति आ उपस्थित होती है। वह इस कारण कि साधक आत्मा अपना चरम निर्णय प्रिय के समान निवेदित कर देती है ---

"जैते तारे रैनि के तेती बारी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न विसारौं तुज्झ।।"(१८)

साधक आत्मा का यह उद्घोष साध्य को विगलित कर देता है। साधक को अपने प्रेम का भी आभास करा देता है(क्योंकि, प्रेम हमेशा द्विपक्षीय ही हुआ करता है।) तब सहसा मिलन पूर्व की अनुभूति जागृत होकर प्रेम विरहिणी आत्मा को भी एक अनिर्वचनीय चेतना व अहसास से भर देती है और मिलन पूर्व की इन अवस्थाओं को भी पार करती हुई साधक की आत्मा अपनी अनन्य प्रेम-साधना के बल पर साध्य की अनुभूति से भरकर चारों ओर उसी का आभास पाने लगती है

"लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।"(१९)

कबीर की प्रेम-साधना क्योंकि संपूर्णतः और समग्रतः दाम्पत्य भाव पर ही आश्रित है, अतः मिलन की उस सुखदावस्था का विवाह रुपक बाँधकर वे विभोर भाव से गाने लगते हैं ---

"बहुत दिनन थे प्रीतम पाए।
भाग बड़े घर बैठे आए।।"

मंगलाचार मांहि मन राखो, राम-रसायन रसना चाखो।
मंदिर मांहि भया उजियारा, लै सूती अपना पीव पियारा।।
मैं रनिवासी जे विधि पाई, हमहिं कहा वह तुमहिं बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछु नहिं कीन्हां, सखी सो हमार रांम मोहि दीन्हा।।"(२०)

निष्कर्ष

इस प्रकार कबीर की प्रेम-साधना पूर्ण हो जाती है। इसी प्रेम का उपदेश वे जीव मात्र को सरसित करने वाला कहा गया है। एकत्व, अनन्यत्व एवं विशुद्ध दाम्पत्य भावाश्रित पावन-प्रेम ही कबीर का वैशिष्ट्य है। दूसरे शब्दों में, हम कबीर की प्रेम-साधना को आत्मा द्वारा परमात्मा की साधना भी कह सकते हैं। वह साधना अनेक प्रकार से प्रभावित होते हुए भी कबीर के निजत्व की निश्चय ही अनन्य परिचायक और इसलिए वरेण्य भी है।

संदर्भ

1. कबीर की काव्य साधना, डॉ. कृष्णदेव शर्मा, अखिलेश प्रकाशन-२००४, पृष्ठ सं०-६१
2. पृष्ठ सं०-६२
3. सुकवि समीक्षा, कबीरदास, प्रो० आनंद नारायण शर्मा, भारती भवन पटना-१, प्रथम संस्करण, नवंबर १९६४, पृष्ठ सं०-२१
4. कबीर एक मूल्यांकन: डॉ. बलदेव वंशी, आधार प्रकाशन, द्वितीय संस्करण-२०११, पृष्ठ सं०-११६
5. कबीर की काव्य साधना, डॉ. कृष्णदेव शर्मा, अखिलेश प्रकाशन- २००४, पृष्ठ सं०-६३
6. वही
7. वही
8. दलित मुक्ति की विरासत: संत कबीरदास, डॉ. सुभाष चन्द्र, आधार प्रकाशन, प्रथम संस्करण-२०१२, पृष्ठ सं०-२२
9. कबीरदास की भक्ति भावना, जूनियर रिसर्च फैलोशिप एवं लेक्चररशिप राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा, हिन्दी(तृतीय पत्र) साहित्य भवन, सी-१७, साइट-सी, सिकन्दरा औद्योगिक क्षेत्र, आगरा-२८२००७ (उ०प्र०),
10. पृष्ठ सं०-११
11. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, प्रकाशन परिवार, संस्करण-२००८, पृष्ठ सं०-७९
12. वही
13. कबीर ग्रंथावली, रामकिशोर शर्मा, १०वाँ संस्करण-२०१५,
14. पृष्ठ सं०-१०७
15. वही
16. कबीर की काव्य साधना, डॉ. कृष्णदेव शर्मा, अखिलेश प्रकाशन-१९६७, पृष्ठ सं०-६७

17. वही
18. सुकवि समीक्षा, कबीरदास, प्रो० आनंद नारायण शर्मा, भारती भवन पटना-१, द्वितीय संस्करण- जुलाई-१९९७, पृष्ठ सं०-२२
19. वही
20. चुने हुए कवि और लेखक, संत कबीर, प्रो० वेदभानु आर्य, शंभुदयाल इंटर कॉलेज गाजियाबाद, प्रो० सुरेशचन्द्र भटनागर, बी.टी.सी.कॉलेज, सरदार शहर, पृष्ठ सं०-४
21. वही
22. कबीर की काव्य साधना, डॉ. कृष्णदेव शर्मा, अखिलेश प्रकाशन-१९६७,पृष्ठ सं०-६९